दोषमुक्ति की साधना : प्रतिक्रमण

श्रीमती रतन चोरडिया

जागकर जीने के लिए और व्रतों की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है। प्रतिक्रमण से प्राप्त स्वदर्शन की प्रवृत्ति दोषों से सर्वथा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। इस प्रवृत्ति से ही श्रावक के जीवन में श्रावकत्व आता है अन्यथा वह नाममात्र का श्रावक रह जाता है। आचार्य श्री शुभचन्द्र जी म.सा. के शिष्य श्री सुमतिमुनि जी म.सा. के प्रवचन के आधार पर लिखित यह लेख सच्चे श्रावकत्व का प्रकाशक एवं निज स्वरूप का बोधक है। *-सम्पादक*

- कृत पापों की आलोचना करना, निन्दा करना, पश्चात्ताप करना प्रतिक्रमण है।
- जो आत्मा ज्ञानादि गुणों से यानी स्वस्थान से हटकर प्रमाद के कारण मिथ्यात्व आदि दूसरे स्थान में चला गया, उसका वापस अपने स्वरूप में आना प्रतिक्रमण है।
- अपने दोषों को जानकर, समझकर, स्वीकार कर, भविष्य में उनसे बचने का संकल्प करना प्रतिक्रमण है।
- प्रतिक्रमण दोनों समय नियमित रूप से की जाने वाली आवश्यक क्रिया है।
- दिनभर की क्रियाओं में जाने-अनजाने, मन-वचन-काया के योग से जो-जो भूलें होती हैं उन भूलों से हमारे व्रतों में दोष लगते हैं। उन दोषों की आलोचना करना प्रतिक्रमण है।

इस प्रकार जीवन व व्रतों की शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण अति आवश्यक क्रिया है। व्रत ग्रहण करने से हमारी इच्छाओं का निरोध होता है। पापों का पश्चात्ताप होता है तथा पुनः वे पाप व दोष हमसे न हों ऐसी सजगता व सावधानी रहती है।

हमने व्रत ग्रहण किये हों चाहे न किये हों, किन्तु दोष व पाप तो हमसे होते ही हैं। उन पापों के करने से हमारे अशुभ कर्मों का बंध होता है। यदि हम आलोचना व प्रायश्चित्त करते हैं तो हमारी आत्मशुद्धि हो सकती है। व्रत ग्रहण करने वाले की अपेक्षा, नहीं करने वालों को ज्यादा दोष लगते हैं। कारण वह तो बिना ब्रेक की गाड़ी है। व्रत ग्रहण करने से पर्वत जितना पाप राई जितना हो जाता है। क्योंकि व्रत ग्रहण करने से हमारी इच्छाओं का निरोध होता है।

प्रातः उठने के साथ ही, हर घंटे में, हम अपने छोटे से छोटे दोषों को देखें। अपने मन-वचन व काया की प्रवृत्तियों को देखें। जो-जो दोष लग गये हों उनका उसी समय यानी हाथों हाथ हम प्रतिक्रमण कर लें। बहुत से निरर्थक कार्य दिन भर में हमसे हो जाते हैं। जो सरल व्यक्ति होते हैं वे उसी समय प्रतिक्रमण करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी शुद्धि कर लेते हैं। जाने-अनजाने में हमसे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आदि स्थावर जीवों की विराधना हो जाती है। शरीर की साता के लिये जल के जीवों की विराधना हम कर लेते हैं। शरीर को टिकाये रखने के लिये अग्नि व वनस्पतिकाय की विराधना हम कर लेते हैं। खाना खाते समय राग-द्वेष कर लेते हैं। खाते समय व परोसते समय अत्यधिक आसक्ति रखकर या सराह-सराह कर खाते हैं, नहीं खाने लायक खा लेते हैं। शाम को प्रतिक्रमण करते समय याद आये या न भी आये, इसलिये आप उसी समय प्रतिक्रमण की आदत डाल दें। मुझे अपनी आत्मा में लौटना है और जो दोष लग गया है उसका प्रतिक्रमण कर उन दोषों से मुक्त होना है। इस प्रकार भावों की विशुद्धि से कर्मो की अधिक निर्जरा होती है।

रात्रि में सोने से पहले हमें अवश्य प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये। ऐसा नहीं है कि हमसे गलतियाँ होती नहीं। पहले भी हमसे गलतियाँ हुईं, आज भी हो रही हैं और आगे भी हो सकती हैं। इसलिये हम अपनी गलतियों को स्वीकार करें व उन्हें दूर करने का पुरुषार्थ करें। हमें गलतियों से जुड़े हुए नहीं रहना है। हर हालत में जागृत रहकर उन गलतियों को दूर करने का प्रयत्न कर आत्मा की शुद्धि करनी है। एक नारकी जीव भी अपनी भूल को स्वीकार कर मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी बन जाता है। इसका मतलब उसने जैसा है, उसको उसी रूप में स्वीकार कर मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण कर लिया। इन सब दुःखों का कारण मैं स्वयं ही हूँ, मुझे कोई दुःखी कर नहीं सकता। इस प्रकार सब दोष अपने पर लेकर उन दुःखों को समभाव से सहन करता है। मुझे कोई दूसरा सुखी भी नहीं कर सकता और न ही कोई दुःखी कर सकता है। इस प्रकार का चिन्तन सम्यग्दर्शन उत्पन्न करा देता है।

हमारा ही अज्ञान व मोह हमें दुःखी करता है। शुभकर्म के उदय में भी हमें राग नहीं करना है। जैसे किसी का सहयोग किया, किसी की भलाई की या किसी को अपने समय का भोग दिया। उसमें भी कामना मत करो कि मैंने किया, इसलिये मुझे भी मिलना चाहिये। ज्ञानी कहते हैं कि आप शुभ को भी जानो व अशुभ को भी जानो। जानकर शुभ पर राग व अशुभ पर द्वेष मत करो। आपने किसी का सहयोग किया और सहयोग करके भी राग-द्वेष कर लिया तो बंधन हो जायेगा। हमने उदय भाव से जो जीवन जीया, शरीर से जितने भी कार्य किये, उन सबका "तस्स मिच्छामि दुक्कडं" देना है।

मुझे बाहर के सब स्थानों से हटकर अपनी चेतना में आना है। मुझे सब दोषों से मुक्त होना है, ऐसे भाव मन में आने चाहिये। हम दिनभर की चर्या को देखना शुरू करें, पूरी की पूरी रील सामने आ जानी चाहिये। जब हम देखना शुरू करेंगे तो खुद को लगेगा कि मुझसे बहुत से अपराध हो गये हैं। पृथ्वी, पानी, वायु, अग्निकाय आदि जीवों की जाने-अनजाने में अनेक प्रकार की हिंसा मन से, वचन से व शरीर के माध्यम से मैंने की, कराई व करके राग-द्वेष पैदा किये। अखबार पढ़कर व टी.वी. देखकर मन में कितने राग-द्वेष किये। इस प्रकार जितनी गहरी नजर होगी उतना ही लगेगा कि हमने अपना अमूल्य समय कितना व्यर्थ में बर्बाद कर दिया। मुँह धोते समय कितना पानी व्यर्थ गिराते हैं। नहाते समय भी आधी बाल्टी पानी से काम चल सकता था, पर मैंने कितना पानी व्यर्थ गँवा दिया। इस प्रकार पानी के जीवों की यतना व उनसे विरत होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के भाव यदि मन में लायेंगे तो इससे हमारे कर्मों की निर्जरा होगी। गर्मी बहुत है और अचानक लाइट चली जाय तो मन में कैसे भाव आते हैं और वापस जब थोड़ी देर के बाद लाइट आती है तब चित्त कैसा प्रसन्न होता है। इस प्रकार दिन भर में कितने राग-द्वेष के भाव मेरे मन में आये। कितनी बार मन में चंचलता के भाव आये। कभी किसी ने प्रशंसा कर दी तो मन में कैसे भाव आते हैं और किसी ने निंदा कर दी, हमारे दोष बताये तो कैसे भाव मन में आते हैं कि इनको तो हमारी गलतियाँ ही दिखती हैं। इस तरह हर बार घटना घटने पर अपने अन्दर के विचारों का निरीक्षण करें। दिनभर में पता नहीं कितने-कितने विकल्पों में हम उलझ जाते हैं। अपने अन्दर के इन सब विचारों को हमें बड़ी गहरी नजर से देखना है। पहले उन दोषों को देखेंगे तभी तो उनको दूर कर सकेंगे। इसलिये प्रतिक्रमण करना है तो अपने किये गये दोषों को देखें और उन्हें दूर करने का प्रयास करें। फिर हमको लगेगा कि मेरा पूरा दिन, पूरा माह, पूरा साल ही क्या मेरी तो पूरी जिन्दगी ही, व्यर्थ के कार्यों को करने में चली गई- ऐसा देखकर कभी हमें रोना भी आ सकता है और यह रोना पूरी जिन्दगी को बदल सकता है।

हम ऐसा प्रतिदिन देखने का अभ्यास करें। दिन भर में क्या, हर क्षण में हमारे विचार बदलते रहते हैं। जितने भी राग-द्वेष के परिणाम हैं, हिंसा के विचार हैं, अशुभ परिणाम हैं, वे कर्म-बंधन के कारण हैं। इसी प्रकार जब हम खाना खा रहे हैं, उस समय कैसे परिणाम आये, कब खाया, कैसा खाया, कितना खाया, ठूँस-ठूँस कर तो नहीं खाया, जो खाने लायक नहीं था, उसे तो नहीं खाया इत्यादि चिन्तन करें एवं भूल के लिए 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' दें।

कपड़ा फट जाता है और हम ध्यान नहीं देते तो वह ज्यादा फट जाता है, इसी प्रकार जीवन में दोष लगते हैं और हम उनकी तरफ ध्यान नहीं देते उन्हें सुधारते नहीं तो ज्यादा बढ़ते जाते हैं। बहुत से भाई-बहिन कहते हैं कि यह रोज-रोज क्या प्रतिक्रमण करना? घर का कचरा रोज निकालते हैं या कचरे में ही रहते हैं? कचरा रोज निकालते हैं और फिर से आ जाता है। हम बाहर के घर को तो बहुत साफ रखते हैं, जो ईंट, चूना, पत्थर से बना हुआ है, पर आत्मा तो रहने का मन्दिर है, जो हमारा भगवान् है उस आत्मदेव को कैसे गंदा रख सकते हैं? इसलिये रोज प्रतिक्रमण कर हम अपनी आत्मा को पवित्र व निर्मल रखें। कुछ दवाइयाँ ऐसी होती हैं जो बीमारी को दूर करती हैं और कुछ बीमारी नहीं है तो भी बीमारी को आने ही नहीं देती, प्रतिक्रमण भी ऐसी ही औषधि है जो दोष लग जाता है तो उसे दूर कर देती है और न हो तो उसे लगने नहीं देती है।

प्रतिक्रमण हमारा अपना कार्य है, इसे हम स्वयं अपने भावों के साथ करें और फिर परिणाम देखें। दूसरा हमें प्रतिक्रमण के पाठों को सुना सकता है, परन्तु हमारे दोषों को, हमारी गलतियों को तो हमें ही सुधारना है। हमारे अपने भावों को तो हम ही देख सकते हैं। जैसे एक छोटा सा छिद्र पूरी नाव को डूबा देता है, वैसे ही व्रतों में लगे ये छिद्र पूरे जीवन को बर्बाद कर देते हैं। प्रतिक्रमण के द्वारा हम उन दोष रूपी छिद्रों को बंद करते हैं। प्रतिक्रमण के माध्यम से ही हमारी जीवन रूपी चादर में लगे सब दाग-धब्बे दूर हो जाते हैं। सारे आस्रव द्वार बंद हो जाते हैं, नये कर्मों का बंधन फिर नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमण की साधना ज्ञान की साधना है, दर्शन की साधना है, चारित्र की साधना है, तप की साधना है एवं वीर्याचार की साधना है। प्रतिक्रमण से मन, वचन व काया में स्थिरता आती है। आठ प्रवचन माता की गोद में साधक का मन स्थिर रहता है।

बहुत से व्यक्ति कहते हैं कि साधु-संतों को दोनों समय प्रतिदिन प्रतिक्रमण करना जरूरी है। साधु-संतों को यदि दोनों समय प्रतिक्रमण करना जरूरी है तो क्या श्रावक के लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक नहीं है क्या? जरा सोचें पाप अधिक कौन करता है? दोष ज्यादा किसको लगते हैं? सावधानी ज्यादा किसको रखनी चाहिये? अतिक्रमण श्रावक-श्राविका के होता है तो प्रतिक्रमण भी उन्हें करना जरूरी है। इसलिये प्रतिक्रमण कभी किसी का छूटना नहीं चाहिये। चाहे खाना खाओ या नहीं, चाहे सोओ या नहीं, पर प्रतिक्रमण तो दोनों समय अवश्य करना है, फिर देखें जीवन का रूपान्तरण हो जायेगा व जीवनचर्या में एक व्यवस्था बनी रहेगी। भीतर में लगेगा कि शक्ति का संचार हो रहा है, तब अनुभव होगा कि प्रतिक्रमण रूपी औषधि अपना काम कर रही है। हम फिर कहीं भी भटकेंगे नहीं एवं किसी तरह अपने घर में लौट कर आ जायेंगे।

प्रतिक्रमण के पहले की जिन्दगी बिल्कुल अलग होती है तथा प्रतिक्रमण के बाद की जिन्दगी बिल्कुल अलग ही होती है। प्रतिक्रमण करने वाला स्वयं के जीवन को एक नया जन्म देता है। हम भी अपने को नया जन्म देने में सक्षम बनें। जिसे आत्मा के सुख की अनुभूति हो जाती है उसे बाहर के सुख की इच्छा-कामना रहेगी ही नहीं। उसे फिर बाहर भटकने की जरूरत ही नहीं। जब मेरी आत्मा में भी वीतरागता का सुख मौजूद है फिर मुझे संसार के क्षणिक सुख अच्छे कैसे लग सकते हैं?

भगवान् की आज्ञा के विपरीत जो-जो भाव किये, जो मुझे नहीं करने चाहिये उन सब भावों को मैं वोसिराता हूँ। ये जो भी दोष थे वे सब कर्मो के उदय से थे। कर्म उदय से जो-जो भाव मैंने किये उन सब भावों को मैं वोसिराता हूँ। आत्मगुणों के अलावा अन्य जितने भी भाव मैंने किये वे सब वैभाविक भाव थे, वे सब मेरे नहीं थे। मैं तो ज्ञान-दर्शनमय हूँ। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निष्कलंक हूँ, निर्मल हूँ। मेरी आत्मा में अनन्त शक्ति है। मैं अपने ही आत्मगुणों में स्थित हो सकता हूँ। मैं कषाय व राग-द्वेष भावों को क्षय करने की क्षमता रखता हूँ। मैं इन सब विभाव भावों का क्षय कर सकता हूँ। मेरा यह स्वरूप है-

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।

हम सब अतिक्रमण से हटकर प्रतिक्रमण में आ जायें तो यहाँ भी आनन्द और आगे भी आनन्द।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org